E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

निघण्टु एवं निरुक्त

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

निरुक्त में यास्क ने निघण्टु में गिनाये गये वैदिक शब्दों की व्याख्या की है। इस दृष्टि से निघण्टु बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ० लक्ष्मण सरूप निघण्टु के विषय में कहते हैं कि निघण्टु की रचना कोश-रचना के अभी तक के सभी ज्ञात प्रयासों में प्रथम है, भारत में तो यह कोश- साहित्य के आरम्भ का ही द्योतक है। साहित्य में जितने बिखरे हुए शब्द हैं उन्हें एक करके एक नियम से सजा देना उस प्राचीन काल के लिये नई ही वस्तु थी। यह सत्य है कि निघण्टु वैदिक शब्दों का पूर्ण कोश नहीं है, इनमें किसी भी वेद के सारे शब्द गिनाये नहीं गये, तथापि कोश-रचना के तात्कालिक सिद्धान्त को देखने पर उसे पूर्ण ही कहना पड़ेगा ।

जिस निघण्टु पर यास्क ने भाष्य की रचना की है वह पाँच अध्यायों में बँटा है। प्रथम तीन अध्याय नैघण्टुक-काण्ड कहलाते हैं और इनके शब्दों की व्याख्या यास्क ने निरुक्त के द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों में की है। निघण्टु के इन अध्यायों में कुल १३४० शब्द परिगणित हैं जिनमें केवल २३० शब्दों की ही व्याख्या यास्क ने इन अध्यायों में की है। इन १३४० शब्दों में पर्यायवाची शब्द संगृहीत हैं जैसे – पृथिवी के २१ पर्याय-शब्द, ११ 'जलना' अर्थवा क्रियायें, १२ 'बहुत' के पर्याय आदि। इसकी रचना ठीक अमरकोश की शैली में ही हुई है।

निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में तीन खण्ड हैं जिनमें क्रमशः ६२, ८४ तथा १३२ पद- अर्थात् कुल २७८ पद हैं। ये किसी के पर्याय नहीं, सभी शब्द स्वतन्त्र हैं। तीनों खण्डों की व्याख्या यास्क ने निरुक्त के चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ अध्यायों में की है। इस अध्याय को नैगम या ऐकपदिक-काण्ड भी कहते हैं। इस काण्ड के शब्द प्रायः सन्दिग्ध और कठिन हैं। डा० बेलवलर कहते हैं- 'निघण्टु नामक वैदिक-शब्दों की सूची के चतुर्थ अध्याय को, जिस पर यास्क ने निरुक्त नाम की व्याख्या लिखी है,

ऐकपदिक कहते हैं क्योंकि इसमें अज्ञात या सन्दिग्ध मूलवाले २७८ शब्द गिनाये गये हैं'। इस काण्ड की व्याख्या आरम्भ करते हुए यास्क भी कहते हैं– "अथ यानि अनेकार्थानि एकशब्दानि तानि अतोऽनुक्रमिष्यामः। अवगतसंस्कारांश्च निगमान्। तत् 'ऐकपदिकम्' इत्याचक्षते"। इससे निष्कर्ष निकलता है कि ये नाम स्वतन्त्र हैं तथा अनेक अर्थ धारण करते हैं, स्वयं किसी के पर्याय नहीं किन्तु साथ ही साथ इसकी बनावट का पता लगाना भी कठिन है, इसीलिये इन्हें ऐकादिक-निगम (उदाहरण या प्रयोग) कहते हैं। इस काण्ड के शब्द भिन्न-भिन्न रूपों और विभक्तियों में हैं।

निघण्टु का पञ्चम या अन्तिम अध्याय दैवत-काण्ड के नाम से विख्यात है। इनके छः खण्डों में क्रमशः ३, १३, ३६, ३२, ३६, तथा ३१ पद हैं जो भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम हैं। ये भी पर्याय नहीं, स्वतन्त्र हैं, किन्तु इनमें विशेषता यही है कि इन नामों के द्वारा देवताओं की स्तुति प्रधानतया की जाती है। इन खण्डों के शब्दों की व्याख्या यास्क ने निरुक्त के सातवें अध्याय से बारहवें अध्याय तक की है। एक-एक खण्ड की व्याख्या एक-एक अध्याय में हुई है। चूँकि इन अध्यायों में यास्क को पर्याप्त स्थान मिला है अतएव देवताओं के विषय में यास्क ने पूर्ण प्रकाश डाला है। निघण्टु की व्याख्या यद्यपि बारहवें अध्याय में समाप्त हो जाती है किन्तु बाद के किसी लेखक ने इनमें दो अध्याय परिशिष्ट के रूप में जोड़कर कुल चौदह अध्याय बना दिये हैं। दैवत-काण्ड के इस परिशिष्ट में देवताओं और यज्ञों के विषय में लिखा है तथा प्रसंगतः कतिपय दार्शनिक विषयों का भी विवेचन है। इसकी शैली भी निरुक्त से बिलकुल मिलती-जुलती है। इस दैवतकाण्ड पर ही वैदिक धर्म और संस्कृति का इतिहास अवलम्बित है क्योंकि वैदिक-देवतावाद पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने वाला कोई भी ग्रन्थ निरुक्त से प्राचीन नहीं।

यास्क ने निरुक्त में निघण्टु के सभी शब्दों की व्याख्या नहीं की है- यह स्पष्ट है। पर्यायवाची शब्दों वाले अध्यायों में तो पूरे पर्याय के समूह (जैसे 'उदक' के १०० नामों) में से केवल किसी एक (जैसे 'उदक') शब्द की व्याख्या करके ही आगे बढ़ जाते हैं। फिर भी यह तथ्य है कि केवल निघण्टु के शब्दों का ही निर्वाचन उन्होंने नहीं किया, प्रसङ्गतः आये कितने ही अन्य शब्दों का भी निर्वचन किया है, जिनमें बहुत-से संस्कृत भाषा (वैदिक नहीं) के भी शब्द हैं। डा० सिद्धेश्वर वर्मा की गणना के

अनुसार निरुक्त में कुल १२९८ निर्वाचन हैं। जहां से निघण्टु के शब्दों की व्याख्या आरम्भ होती है उसके पूर्व यास्क ने अपने शास्त्र में प्रवेश करनेवालों के लिये बहुत ही विस्तृत भूमिका लिखी है। निघण्टु के प्रथम शब्द 'गो' की व्याख्या निरुक्त में द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद से आरम्भ होती है। तब तक का अंश अर्थात् पूरा प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय का प्रथम पाद केवल भूमिका ही है जिसमें पद के भेद, शब्दों का धातुज-सिद्धान्त, निरुक्त की उपयोगिता, निर्वाचन के नियम आदि विभिन्न उपयुक्त विषयों पर विचार किया गया है। यही दशा दैवत-काण्ड के आरम्भ में भी है। वैदिक देवताओं के नामों का निर्वचन करने के पूर्व यास्क सप्तम अध्याय में भूमिका के रूप में देवताओं के स्वरूप, भेद, स्वभाव आदि का विश्लेषण कर लेते हैं।

निघण्टु के किसी शब्द को लेकर यास्क तुरन्त उसकी निरुक्ति करते हैं। जैसे– 'नद्यः कस्मात्? नदनाः भवन्ति= शब्दवत्यः'। 'नदी' किस धातु से बना और क्यों उसे नदी ही कहते हैं? उत्तर है-'नद्' धातु से, जिसका अर्थ है 'शब्द करना', 'नदी' बना है क्योंकि नदियाँ जोरों की आवाज करती हैं। यास्क ऐसे शब्दों का प्रयोग दिखलाने के लिए या तो सीधे ही किसी का उद्धरण दे देंगे अथवा उसकी भूमिका बाँधते हुए इतिहास आदि का आश्रय लेंगे तब ऋचा का उद्धरण देंगे। कभी-कभी उस शब्द का केवल निर्वचन करके भी आगे बढ़ जाते हैं। अस्तु, ऋचा का उद्धरण देने के बाद उसका अन्यव किये बिना ही एक-एक शब्द का प्रतिशब्द सरल संस्कृत में देते हैं। प्रतिशब्द-व्याख्या करने में ये पदपूरण करनेवाले शब्दों को (हि, तु, नु आदि) को छोड़ देते हैं।

कभी-कभी सन्देहास्पद या विवादास्पद स्थानों में जैसे- वेदमन्त्रों की सार्थकता, धातुज-सिद्धान्त आदि विषयों पर प्रबल शास्त्रार्थी की भाँति डटकर भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुसार, पूर्वपक्ष की स्थापना करते हुए, उसका तीव्र-युक्तियों से खण्डन करके अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। अपने सिद्धान्तों के उल्लेख के समय भिन्न-भिन्न विचारों वाले विद्वानों के मत भी उद्धृत करते जाते हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि यास्क सच्चे वैज्ञानिक की आत्मा निवास करती है। इसी प्रणाली से सम्पूर्ण निरुक्त की रचना हुई है ।

इस प्रकार की व्याख्या द्वारा यास्क ने निघण्टु की महत्ता प्रायः बढ़ा दी है, क्योंकि यास्क के द्वारा प्रदर्शित मौलिकता होने पर भी निरुक्त की पृष्ठभूमि तो निघण्टु ही है। इस स्थान पर इन दोनों के ऐतिहासिक पक्ष का विश्लेषण क आवश्यक है।

यह बात निर्विवाद सत्य है कि निघण्टु अनेक थे। प्रत्येक में वैदिक-शब्दों का कोश था जो संकलन करनेवाले की इच्छा के अनुसार अपनी विशेषता लिये हुए था। वर्तमान निघण्टु के अलावे यास्क ने स्वयं एक अन्य निघण्टु का संकेत किया है। यास्क के अनुसार निघण्टु व्यक्तिवाचक शब्द नहीं, किन्तु जातिवाचक है। वे कहते हैं कि जिसमें निम्नलिखित चार बातें हों वही निघण्टु है- (१) समानार्थक धातुओं का संग्रह (एतावन्तः समानकर्माणो धातवः), (२) एक ही अर्थवाले भिन्नशब्दों का संग्रह (एतावन्ति अस्य सत्त्वस्य नामधेयानि), (३) कई अर्थों वाले शब्दों का संग्रह (एतावतामर्थानाम् इदमभिधानम्) और (४) देवताओं के प्रधान तथा गौण नामों का संग्रह (नैघण्टुकमिदं देवतानाम्, प्राधान्येन इदम्, तदन्यदैवते मन्त्रे निपतति नैघण्टुकं तत्)। वर्तमान-निघण्टु के केवल तीन ही खण्ड हैं जिनका इन चारों से मेल दिखाने का प्रयास दुर्गाचार्य ने अपनी निरुक्त-वृत्ति में किया है। ऐकपदिक-काण्ड के 'अनवगतसंस्कार' वाले शब्द इस चतुर्लक्षणी में नहीं आते। अवश्य ही इन्हीं लक्षणों से युक्त अन्य निघण्टु भी रहे होंगे, जिनमें लक्षण के अव्याप्ति और अतिव्याप्तिदोष नहीं होंगे।

यास्क ने निरुक्त के आरम्भ में ही निघण्टु का बहुवचन में प्रयोग करके इस तथ्य की ओर निर्देश किया है कि निघण्टु कई थे। वे शब्दों के चार भाग करते हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। वर्तमान निघण्टु में तो केवल नाम और आख्यात ही हैं, क्या उपसर्ग और निपातों का संग्रह रखनेवाला भी निघण्टु था? आचार्य भगवद्दत ने भी कई प्रमाणों से सिद्ध किया है कि निघण्टु अनेक थे। निरुक्त में जिन प्राचीन आचार्यों (निरुक्तकारों) के नाम आये हैं वे सब निघण्टु की भी रचना करनेवाले थे। अथर्वपरिशिष्ट का ४८ वाँ परिशिष्ट भी निघण्टु ही है जिसे ये कौत्सव्य कृत मानते हैं।

यास्क ने 'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः' वाले सन्दर्भ के द्वारा निघण्टु के पारम्परिक रचयिताओं की ओर संकेत किया है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि प्रस्तुत निघण्टु जैसा कोश-ग्रन्थ परम्परा से प्राप्त होकर एक बार किसी व्यक्ति के द्वारा संकलित हुआ है। जिस प्रकार पाणिनि की

अष्टाध्यायी परम्परा से ही प्राप्त कुछ नियमों, शब्दों और परिभाषाओं को ग्रहण करने पर भी पाणिनि की मौलिकता प्रदर्शित करती है उसी प्रकार निघण्टु के शब्दों का संकलन भी परम्परा से ही प्राप्त है किन्तु कोई एक व्यक्ति ही इसे वर्तमान रूप देने में समर्थ है। महाभारत (मोक्षधर्मपर्व, अध्याय ३४२, श्लोक ८६-८७) के अनुसार प्रजापति कश्यप इस निघण्टु के रचयिता हैं ।

कई विद्वान् महाभारत के उपर्युक्त श्लोकों को प्रमाण-कोटि में नहीं लाते तथा कहते हैं कि निरुक्त और निघण्टु दोनों के रचयिता यास्क ही हैं। स्वामी दयानन्द ने इस मत का प्रतिपादन किया और आचार्य भगवद्दत्त जी ने इसके लिए कई प्रमाण दिये हैं। इनका कथन है कि जितने निरुक्तकार हैं वे निघण्टु के भी प्रणेता हैं। यास्क को लगाकर कुल चौदह निरुक्तकार हैं- औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूर्णि, और्णनाभ, तैटिकि, गालव, स्थौलाष्ठीवि, कौष्टुकि, कास्थक्य, यास्क और शाकपूणि का पुत्र कोत्सव्य। इन सबों ने अपने-अपने निघण्टु बनाये और उस पर ही भाष्य लिखा। महर्षि यास्क सबसे अन्त में हुए इसलिए इन्हें सबों से पर्याप्त सहायता मिली। निघण्टु को यास्क-रचित मानने के लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं-

(१) मधुसूदन सरस्वती अपने महिम्न स्तोत्र की व्याख्या में लिखते हैं 'एवं निघण्ट्वादयोऽपि वैदिकद्रव्यदेवतात्मकपदार्थपर्यायशब्दात्मका निरुक्तान्तर्भूता एव। तत्रापि निघण्टुसञ्ज्ञकः पञ्चाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनेव कृतः'। अर्थात् पाँच अध्यायों वाला निघण्टु यास्क का ही बनाया हुआ है।

(२) सायणाचार्य ऋग्वेद-भाष्य की भूमिका में कहते हैं– "पञ्चाध्यायरूपे काण्डत्रयात्मके एतस्मिन्ग्रन्थे परनिरपेक्षतया पदार्थस्योक्तत्वात् तस्य ग्रन्थस्य निरुक्तत्वम्। तद्व्याख्यानञ्च 'समाम्नायः समाम्नातः' इत्यारभ्य 'तस्यास्तस्थास्ताद्भाव्यमनुभवति अनुभवति' इत्यन्तैः द्वादशभिरध्यायैः यास्को निर्ममे"। अर्थात् पाँच अध्यायोंवाला निघण्टु भी निरुक्त ही है। उसकी व्याख्या यास्क ने की।

(३) इन दोनों से भी प्राचीन वेङ्कट-माधव ऋग्वेद (७/८४/४) की व्याख्या में लिखते हैं-"तत्रैकविंशतिः नामानि 'काचिद् गौः विभर्त्ति' इति पृथिवीमाह, तस्याः हि यास्कपठितानि एकविंशतिः नामानि"। अर्थात् यास्क के द्वारा पढ़े गये पृथिवी के २१ नाम।

(४) निरुक्त के आरम्भ में 'समाम्नायः समाम्नातः' कहा है मानों एक ही ग्रन्थ में कोई नया अध्याय आरम्भ कर रहे हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार निरुक्त का आरम्भ 'अथ' से होना चाहिये था। अतः निघण्टु और निरुक्त एक ही ग्रन्थ हैं।

इन तर्कों से निघण्टु तथा निरुक्त एक ही ग्रन्थ तथा यास्क प्रणीत मालूम पड़ते हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ये सभी तक निस्सार हैं। आचार्य सायण का कहना ठीक है कि निघण्टु भी निरुक्त ही है, क्योंकि वेदाङ्ग दोनों मिलकर ही हैं। परन्तु वे केवल यही कहते हैं कि यास्क ने उसका भाष्य १२ अध्यायों में किया, निघण्टु को यास्ककृत तो नहीं कहते। भाष्य मूल के बिना व्यर्थ है, अतएव दोनों का साथ मिलना आयुक्त नहीं। निघण्टु को निरुक्त का अंग मानने के कारण (भले ही यास्क प्रणीत न हो) टीकाकारों ने अध्यायों को बढ़ाकर लिखा है। 'अथ' से आरम्भ न होना दूसरे कारण से है। वेङ्कटमाधव का मूल अर्थ है - पृथिवी के इक्कीस नाम, जिस रूप में यास्क ने उनका ग्रहण किया। सरस्वती जी ने निश्चय ही भ्रम में पड़कर वैसा लिखा है जो आधुनिक विद्वानों में भी है।

यही कारण है कि आधुनिक विद्वान् (प्रो० रॉथ, कर्मरकर, सरूप आदि) तथा प्राचीन टीकाकार (स्कन्द-महेश्वर, दुर्ग) निघण्टु को किसी अज्ञातनामा ऋषि की रचना मानते हैं। दुर्ग ने तो स्पष्ट लिखा है- 'तस्यैषा..... सा च पुनरियं त इमं ग्रन्थं गवादिदेव पत्न्यन्तं समाम्नातवन्तः'। अर्थात् निघण्टु का संग्रह श्रुतर्षियों ने किया।

अतएव उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि किसी ऋषि ने परम्परा प्राप्त शब्दों का संस्करण किया जो वर्तमान निघण्टु के रूप में है। 'निघण्टु' एक जातिवाचक शब्द है, ऐसे ही कई निघण्टु थे जिनपर भाष्य लिखे गये होंगे। किन्तु यास्क के सामने एक ही निघण्टु था, जिसपर दूसरों के भी भाष्य रहे हों। उनकी अशुद्धियाँ देखकर उन्होंने अपना अभिनव निरुक्त लिखा जो आज हमें मिला है।